卐 महासती 卐

भाग

४

२) रुपये

ॱ લેખક ॱ

पं० वीरसेनविजयजी गणिवर्य

-: પ્રકાશક :-

लब्धिकृपा प्रकाशन समिति

कोल्हापुर

धारिणी

उत्तम प्रकार से शीयल पालने में तत्पर जीव धारिणी की तरह परलोक में सुख–संपत्ति प्राप्त करते हैं ।

उज्जयनी नगरी में चंडप्रद्योत राजा राज्य करते थे, उनके दो भाई थे, गोपाल तथा पालक। दोनों की प्रीति क्षीरनीर समान थी । एक दिन धर्मघोष सूरि महाराज के पास धर्म देशना श्रवण करने गये ।

कर्मरूप जल तरंग से प्रवाहमान प्राणी संसार सागर में मिलता है तथा बिछुड़ता है । ऐसे सागर में कौन किसके बांधव ?

ऋतुएं आती हैं और जाती हैं । चन्द्रमा अस्त होता है साथ ही उदय भी । लेकिन नदी का नीर और मानव का जीवन जाने के बाद वापस नहीं आता ।

गोपाल को यह सुनकर वैराग्य हुआ और प्रव्रज्या ग्रहण की । पालक के दो लड़के थे एक दंति-वर्धन और एक राष्ट्रवर्धन । दोनों धर्म-कर्म में अति प्रवीण होने लगे ।

सुना है कि रूप-यौवन और उच्चकुल प्राप्त होने पर भी यदि विद्या विहीन है वो किंशुक के फूल समान है। विबुधता और नृपत्व कदापि समान नहीं है। नृप तो स्वदेश में पूजित होता है और विद्वत्ता सर्वत्र पूजित होती है।

विद्या कला में निपुण दोनों का राजकुमारियों के साथ लग्न कर दिया तथा दंतिवर्धन को राजा तथा राष्ट्रवर्धन को युवराज पद देकर संयम ग्रहण किया।

त्यागवृत्ति की महिमा महान है। चक्रवर्ती जिस समय अपना चक्रवर्ती पद त्याग कर देता है इतने समय में कोई दुर्बुद्धि भिक्षुक अपना एक भिक्षापात्र भी नहीं छोड़ सकता है।

राष्ट्रवर्धन की स्त्री धारिणी महासती थी। उसके एक पुत्र था जिसका नाम था अवंतिसेन।

एक बार धारिणी का अनुपम रूप देखकर दंतिवर्धन ने मन में धारिणी को अपनी पत्नि बनाने का विचार किया और दासी के द्वारा यह समाचार धारिणी को पहुंचाया। धारिणी ने कहा—राजा होकर ऐसा बोलने में शर्म नहीं आती। मैं छोटे भाई की पत्नि हूं तथा परस्त्री गमन से नरक में जाना पड़ता है। क्या

आपने सुना नहीं है, अपने पराक्रम से विश्व को जीतने वाले परस्त्री गमन की इच्छा मात्र से ही अपना कुल क्षय कर नरक में गये ।

कहा गया है कि—परस्त्री के रूप को देखने के बाद भी वृषभ के समान उसके सामने न देखकर अपने पथ पर आगे बढ़ता है वह किसको वंदनीय नहीं होता सभी को वंदनीय होता है । अकार्य करने में प्रमादी, प्राणि वध में पागल, परनिंदा सुनने में बधिर, परस्त्री को देखने में अंधा, ये सभी पुरुष धन्यवाद के पात्र हैं । ब्रह्मचारियों को देवदानव यक्ष-राक्षस, किन्नर सभी नमस्कार करते हैं ।

धारिणी के ऐसे मूल्यवान वचन भी राजा के लिए पत्थर पर पानी जैसे बने । राजा ने कुछ और सोचा, जब तक छोटा भाई जीवित है, वहां तक वह मेरे को स्वीकार नहीं करेगी । अतः प्रथम मेरे भाई का घात करूं । रे वासना ! अपने भाई का घात करने की वृत्ति जन्माती है । राजा के दिल में बैठे कामपिशाच ने अपने छोटे भाई का घात करवा दिया । अपने पति की हत्या सुनकर धारिणी सचेत बन गई कि अभी शीयल की रक्षा में खतरा है, समझकर भाग गई और कोशांबी में गई, वैराग्यवासित बनी, दीक्षा ग्रहण की, लेकिन एक बात

उसने गुप्त रखी, कारण कि कह देवे तो दीक्षा नहीं मिलती, वह बात थी गर्भ की । गर्भ घर में बढ़ रहा यह देखकर गुरुणी ने उलाहना दो । यह क्या किया । धारिणी ने अपनी सभी बात कह दी ।

धारिणी ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। उस पुत्र को मुद्रा-ग्राभरणों से ग्रलंकृत कर राजा के महल के पास छोड़ दिया । रानी ने बालक को देखा, बालक को राज महल लाये तथा मणिप्रभ नाम रखा। राजा परलोक गया तब प्रधानों ने मिलकर मणिप्रभ को राज्य सिंहासन पर आसीन किया ।

दंतिवर्धन को छोटे भाई के घात के बाद पश्चाताप हुग्रा ग्रौर खुद संतान हीन होने से धारिणी के पुत्र ग्रवंतिमेन को राज्य सौंप कर दीक्षा ग्रहण की ।

अवंतिसेन बलवान बनकर मणिप्रभ के पास दण्ड मांगने लगा । जब मणिप्रभ ने दंड न दिया तो युद्ध करने के लिये सैन्य सहित कोशांबी नगरी की सीमा में आया ग्रौर कोशांबी को घेर लिया ।

यह देखकर धारिणी माता दीक्षित बनी वहां ग्राकर ग्रवंतिसेन को युद्ध निवारण की और ग्रन्य सभी बात कही । ग्राप दोनों भाई हैं । यह सभी सुनकर

परस्पर प्रीति वाले बने। बाद में उज्जयनी नगरी में आकर उनको साध्वी माता ने धर्म देशना दी।

धर्म से उच्च कुल में जन्म, पांच इन्द्रियों की पूर्णता, शरीर, सौभाग्य, आयुष्य, बल, निर्मलयश, विद्या तथा अर्थ संपत्ति प्राप्त होती है।

साध्वी माता की धर्ममय देशना सुनकर दोनों ने सम्यक्त्व मूल बारह व्रत को अंगीकार किया। जिन धर्म का पालन करने लगे।

साध्वी माता धारिणी चिरकाल पर्यन्त चरित्र का पालन कर, सर्व कर्म क्षय कर मोक्ष में गयी। ❖

संयमी का आहार

बुद्ध ने भी कहा है—'एक बार खाने वाला महात्मा, दो बार खाने वाला बुद्धिमान और दिन भर खाने वाला पशु है।" अल्पाहार के विषय में कहा है—

"थोवाहारो थोव भजियो, य जो होइ थोव निद्धोय।
थोवो वहि उवगरणो तस्स देवावि पणमंति।।"

संयमी का आहार कैसा हो इस विषय में ज्ञानी कहते हैं—

"हिया हारी मिया हारी, अप्पाहारी य जे नरा।
न ते विज्जा भि गिच्छंति, अप्पाणं ते तिगिच्छगा।।"

जागरिज्ज धम्मजागरिआए

❀ जब सारा जगत् सोया हो .. उस समय तुम जागो ! रात्रि की नीरवता और गम्भीरता में डूब कर आत्मचिंतन प्रारम्भ करो । 'मैं कौन हूं ? मेरा यह कौन सा जीवन है ? इस जीवन में क्या उचित कर्तव्य है ? पांच इन्द्रियों के विषय कैसे असार हैं, मृत्यु कितनी भयानक है ? कितनी अनिश्चित है ? मृत्यु के बाद मेरी कौनसी गति होगी ?

❀ जन्म और मृत्यु से बचाने वाला तत्त्व एक मात्र धर्म है । इसलिये सर्वज्ञ परमात्मा ने विश्व को धर्म' प्रदान किया है । मेरे आंतर बाह्य जीवन में धर्म का आचरण होना ही चाहिए ।

❀ रात्रि का कुछ समय इसप्रकार की 'धर्मजागरिका' में व्यतीत होना चाहिये । रात्रि में किया हुआ धर्मचिन्तन आत्मा की गहराई को छूता है ।

पद्मावती, गोरी, गंधारी, लक्ष्मणा, सुशोमा और जंबुवती

द्वारिका नगरी में वसुदेव के पुत्र तीन खंड के स्वामी श्रीकृष्ण वासुदेव न्याय मार्ग से राज्य का पालन करते थे। उनने पद्मावती, गौरी, गंधारी, लक्ष्मणा, सुशीमा, जंबुवती, सत्यभामा और रुक्मणी आदि आठ राजकन्याओं के साथ लग्न किया और इन आठ रानियोंको पट्टरानी के रूप में स्थापित की।

श्री नेमिनाथ जो समुद्रविजय के सुपुत्र थे, बाईसवें तीर्थंकर थे। राज्य, स्त्री आदि को तृण समान गिनकर वार्षिक दान देकर संयम ग्रहण कर गिरनार पर्वत पर केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। तत्पश्चात् भव्य जीवों को उपदेश दान देकर तारते हुए द्वारिका नगरी में बाहर के उद्यान में पधारे। वन पालक ने जाकर बधाई दी। वन पाल को अच्छा दान देकर संतुष्ट किया और सुनकर हर्षचित्त वाले बने। आज मेरे भाई नेम नाथ प्रभु को वंदन करने जाऊंगा। समुद्रविजय आदि

राजाओं के साथ वंदना की। तत्पश्चात् प्रभु ने धर्मोपदेश दिया—

जो मानव श्रद्धा के साथ जिनेश्वरदेव की पूजा करता है। स्वर्ग तो गुरु के आंगन में ही है। उत्तम साम्राज्य, संपत्ति दासी के समान है। शरीर रूप सदन में सौभाग्य आदि गुणों की पंक्ति विलसित होती है। संसार से शीघ्र तिर जाता है, मोक्ष उसके कटवल्लव में रहता है।

रोहिणाचल रत्नों का, आकाश ताराओं का, स्वर्ग कल्पवृक्षों का, सरोवर सरोजों का, सागर जल का, चन्द्रमा प्रकाश का इसीप्रकार श्री संघ सर्व गुणों का स्थान है अतः श्री संघ की पूजा करणीय है।

देशना समाप्त होने पर श्रीकृष्ण ने पूछा—हे प्रभो ! मेरी आठ पट्टरानियां सती हैं या असती ? तथा साल भर में सर्वोत्कृष्ट तिथि कौनसी है ? तेरी आठों पत्नियां महासती हैं और मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी सर्वोत्कृष्ट है। हे प्रभो ! क्यों ? भगवंत ने कहा—इस एकादशी को अरनाथ जिन की दीक्षा, मल्लिनाथ प्रभू का जन्म-दीक्षा-केवलज्ञान, नेमनाथ प्रभू का दीक्षा कल्याणक इसप्रकार भारत में पांचकल्याणक अन्य चार

भरत ने पांच-पांच । कुल २५ भरत के ऐरावत जो पांच हैं उनके पांच २ कल्याणक कुल २५ दोनों मिलाकर ५० कल्याणक, जिसप्रकार वर्तमान के इसीप्रकार अतीत तथा भविष्यतकाल के कुल १५० कल्याणक मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को हुए हैं, अतः सर्वोत्कृष्ट तिथि है ।

भगवान के उपदेश से श्रीकृष्ण ने अपनी जंबुवती आदि स्त्रियों के साथ इस तिथि की विशेष आराधना की । अन्य लोग भी इसीप्रकार विशेष आराधना करने लगे । अभी तक यह आराधना भव्य जीव करते हैं ।

आठ पट्टरानियों को शीयलव्रत से चलित करने के लिये बहुत प्रयत्न किये गये लेकिन चलित नहीं हुई । आठों पट्टरानियां तीन काल पूजा, उभयकाल प्रतिक्रमण करती जीवनयापन करती थीं । एक सुनहरे समय में आठों ने नेमीनाथ प्रभू के पास दीक्षा ग्रहण की । प्रवर्तिनी के साथ रहती हुई छट्ठ-अट्ठम आदि विविध तत्पश्चर्या करके शत्रुंजय गिरिराज पर सर्व कर्मों का क्षयकर आयुष्य पूर्ण कर मोक्ष में गयीं ।

सत्यभामा और रुकमणि की कथा शांब प्रद्यम्ननी में आ गयी है ।

ममत्तं बंधकारणं

❀ ममता मत करो !

❀ 'यह वस्तु मेरी, यह व्यक्ति मेरा, यह शरीर मेरा....' इस प्रकार को ममता दुःख देती है ।

❀ यदि ज्ञानदृष्टि खुली है तो ही यह बात समझोगे !

❀ आत्मा से भिन्न कोई भी जड़-चेतन पदार्थ अपना नहीं है । जो पदार्थ अपना नहीं है, अपना हो ही नहीं सकता है, उस पदार्थ को अपना मानकर, ममता बांधना उचित है क्या ?

❀ ममता ही तो मन का बंधन है ! ममता से मन पाप कर्म बांधता है और ममता से ही जीव दुर्गति में चला जाता है । ममता में से अशान्ति-संताप और उद्वेग पैदा होते हैं ।

❀ किसी जड़-चेतन पदार्थ को लेकर 'यह मेरा है,' ऐसा आग्रह मत रक्खो । व्यवहार भाषा में भले आप बोलें कि 'यह घर.. यह पत्नी यह धन मेरा है ...' परन्तु भीतर में आप जाग्रत रहें .. 'यह कुछ मेरा नहीं है....परन्तु मेरा है' ऐसा बोलना पड़ रहा है ।

महासती कलावती

मंगला देश की राजधानी शंखपुर में शंखराजा राज्य करते थे। शंखराजेश्वर की न्यायप्रियता और प्रजावत्सलता का यशोगान चारों ओर होता था। राजा दीनों के शरणस्थान एवं दुखियों के पिता थे।

एक दिन की बात है, राजसभा में राजा विराजमान थे। उसी समय वाणिज्य विशारद दत्त नामक श्रेष्ठी ने उपस्थित होकर नमस्कार किया।

व्यापार निमित्त पृथ्वी पर नये-नये देश, नगर व ग्राम में भ्रमण करते हुए आपने कोई कौतुक-आश्चर्य देखा हो तो कहें। राजा ने कौतुकभाव से पूछा !

देव ! बाग में जैसे वल्लरी बढ़ती है, द्वितीया का चांद जैसे वृद्धिगत होता है, उसीप्रकार लक्ष्मी वाणिज्य में बढ़ती है। मैं व्यापारार्थ देवशालपुर में गया था।

देवशालपुर में मैंने जो कौतुक देखा वह अवर्णनीय है, अपूर्व है। ऐसा बोलते-बोलते एक वस्त्र-

पट्ट खोलकर दिखाया, वस्त्रपट्ट पर अंकित नयनरम्य मनोहर, मनोज्ञ चित्र देखते-देखते राजा आश्चर्यविभोर होकर बोले—

यह चित्र किसका है? नागकन्या है? देवी अप्सरा है? पातालवासिनी है? या मानवीय कन्या है?

राजा के मनोगत भावों को जानकर श्रेष्ठी बोले, राजेश्वर! यह किसी अप्सरा, देवकन्या का चित्र नहीं है। देवी जैसी अवश्य है, लेकिन मानवीकन्या का चित्र है। चित्र में जितनी सुन्दरता सुडोलता, सौष्ठवता और शालीनता है, इससे तो कई गुना अधिक प्रत्यक्ष में है। चित्र के दर्शन में इतनी मुग्धता है तो साक्षात् दर्शन में पूछना ही क्या? दत्त ने कहा।

राजा तो रसविभोर आश्चर्यचकित होकर याचक दृष्टि से एकटक देखता ही रहा जिसप्रकार भक्त भक्ति से प्रभु का रूप निरखने में तन्मय बन जाय।

आज का मानव देखने से क्या होता है? ऐसा कहकर दृष्टिदोष बढ़ा रहा है। जहां-जहां दृष्टि डालते हैं वहां से मन के भीतर पाप की सृष्टि रचता जा रहा है। देखो! राजा ने सिर्फ चित्र देखा और उसे प्राप्त करने की कामना जागी और वही कामना उन्हें संतप्त

बेचैन बना देगी न ? सिनेमा देखने से क्या होगा ? यह तो पिक्चर है । लेकिन देखो ! सिनेमा ने आज के युग को कैसी पतन की खाई में धकेल दिया है ? यह तो सबको ही विदित है ।

राजा ने पूछा इस कन्यारत्न की परिचय रेखा तो दें । देवशाल नगर के राजेश्वर विजयसेन है, उनकी रानी श्रीमति है उनकी कलावती नामक यह पुत्री है । यथा नाम तथा गुण है, कलावती सभी कलाओं में कुशल है सौन्दर्य का सागर है, काव्य का भन्डार है, रूप का अंबार है, चेहरा चमकदार है । कलावती का एक भाई भी है उसका नाम जयसेन है ।

एक दिन की बात है जयसेन को एक काला-जहरीला सर्प डसा और जयसेन निश्चेष्ट मृत प्राय बन गया जिससे राजा शोकाकुल हो गया ।

उस समय मैं उसी नगरी में था, मुझे यह समाचार ज्ञात होते ही, मैंने वहां जाकर जयसेन को मंत्र सुनाकर उसका जहर उतार दिया । जहर नष्ट होने से जयसेन निद्रामुक्त आदमी की तरह उठा ।

राजा प्रमुदित-प्रफुल्लित बना, सुवस्त्र-सुवर्ण से मुझे सत्कारित-सम्मानित किया ।

एक दिन राजसभा में मैं उपस्थित था उस समय राजा ने अपना मनोगत भाव बताने का प्रयास किया।

व्यापारदक्ष दत्त ! जिसप्रकार तूने तेरे भैया जयसेन पर उपकार किया और मुझे चिंता से विमुक्त किया उसी प्रकार तेरी बहन पर उपकार करके मुझे चिंता के सागर से पार कर दे।

बात को विशेष स्पष्ट करते हुए देखो ! जैसे-जैसे कन्या बढ़ती जाती है वैसे-वैसे पिता की चिंता भी बढ़ती जाती है। कलावती ने यौवन के उपवन में पद-न्यास कर लिया है अब उसकी शादी की चिंता है।

पिताजी ! शादी करूंगी तो सही, लेकिन जो मेरे चार प्रश्नों का सही जवाब देंगे उसी को ही मैं पति-देव के रूप में स्वीकार करूंगी। राजपुत्री की यह बात सुनकर विशेष चिंता होती है।

पुत्री जैनधर्म की अनुरागिनी और अनुयायी है इसलिए पति भी जैनधर्म का अनुयायी मिले यही अभिलाषा है।

कलावती के पाणिग्रहण हेतु स्वयंवर मंडप का निर्माण कार्य शुरु हो गया है, और शादी का मुहूर्त भी दो माह के बाद चैत्र शुक्ल एकादशी है।

राजा क्षण भर चक्षु बंद कर सिर धुनने लगे। उसका खून सूख गया, हंसते चेहरे पर मायूसी छा गयी। खिलते फूलों पर मानों हिमपात हो गया।

राजा का ऐसा उदासीन चेहरा देखकर दत्त ने आश्वासन पूर्ण मधुर स्वरों में कहा—खिन्न मत बनिये, इस समय शकुन इतना अनुकूल है कि आपका मनोअभिलाषित कार्य पूर्ण होगा, कलावती के नाथ आप ही बनेंगे, लेकिन आपको शीघ्र ही सरस्वती देवी की आराधना करनी पड़ेगी, जिससे कलावती के चार प्रश्नों के जवाब दे सकोगे।

जिसप्रकार नेगेटिव फोर्स और पोजेटिव फोर्स मिलकर ही विद्युत उत्पन्न करते हैं, उसीप्रकार उत्साह और लगन ये दो कार्य साधक के बल हैं।

संकल्पनिष्ठ राजेश्वर ने तप-जप और ब्रह्मचर्य द्वारा आराधना करके सरस्वती देवी को प्रसन्न किया। प्रसन्ना संतुष्टा सरस्वती देवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा, तेरे हस्त कमल के योग से पुतली ही कलावती के सवालों का जवाब देगी। राजा ने देवी को प्रणाम किया, देवी अंतर्ध्यान हो गयी।

प्रमुदित बना राजा देवशाल के प्रति जाने को उत्कंठित बना। शुभबेला में शकुनपूर्वक दत्त व्यापारी

को लेकर राजा ने प्रस्थान किया। उत्सुकता ने उत्साह को बढ़ाया और उत्साह ने पंथ को निकट बना दिया, न जाने कितना जल्दी देवशाल नगर आ गया।

शंखराजा के आगमन का समाचार मिलते ही विजयसेन राजा ने अपने सुपुत्र जयसेन को स्वागत के लिये भेजा। दोनों राजा की अब भेंट हुई, तब वातावरण में खुशी की खुशबू प्रसरने लगी, नगर प्रवेश बड़ी धूमधाम से मनाया।

शादी की तैयारियां हो रही थी। शहनाईयां बज रही थी। स्वयंवर रच गया था। देशोदेश के राजा पधारे थे। सभी राजा मंच पर आसीन हो गये। शुभ शकुन लेकर शुभ बेला में छत्र धारण की हुई कलावती सुखासन में बैठकर वहां आयी। स्वयं की प्रतिहारी द्वारा कलावती ने चार प्रश्न पूछे।

देव कौन? गुरु कौन? तत्त्व क्या? सत्त्व क्या? इन चार प्रश्नों का जवाब देने वाले भाग्यशाली के कंठ में कलावती वरमाला डालेगी। सर्व भूपति अपनी प्रज्ञानुसार जवाब देने लगे।

कलावती जैनधर्मिनी थी, अतः इन जवाबों से वह संतुष्ट नहीं हुई।

शंखनृपति ने कहा—मैं नहीं यह स्तंभ पर जो पुतली है वह कलावती के सवालों का जवाब देगी, ऐसा कहकर पुतली पे हाथ रखा और पुतली को बोलने को कहा—

देव वीतराग हैं, महाव्रत धारक गुरु हैं ।

सर्व जीवों पर दया करना यह तत्व है ।

इन्द्रियों पर निग्रह करना यह सत्व है ।

यह सुनकर प्रमुदित और आनंदित बनी कलावती ने शंख के कंठ में वरमाला डाली । शंखनृपति ने माला परिधान की, उस समय अन्य राजाओं ने ईर्षा द्वेष तो किया लेकिन कलावती के पुण्य और शीलप्रभाव से कुछ नहीं कर सके । शीघ्रातिशीघ्र राजेश्वर ने बड़ी धूमधाम से बहुत ही खुशियों के साथ विवाह महोत्सव मनाया । कन्यादान में दामाद को अश्व-हस्ति-सुवर्ण अलंकार आदि दिये गये । श्वसुर की आज्ञा लेकर राजा ने अपने वतन की तरफ प्रस्थान किया । दत्त ने भी साथ में जाने की अनुमति मांगी । वह भी साथ में चल पड़ा ।

प्रवेशोत्सव धूमधाम से मनाया गया और लोग कहने लगे कितनी युक्त जोड़ी है । सांसारिक सुखों में काल कैसा निर्गमन हो जाता है यह ज्ञात भी नहीं होता ।

सुख का दिन क्षण लगता है और दुःख का क्षण दिन जितना लंबा लगता है।

एक रात को मधुर निद्रा में देवी लीन थी, उसी समय उसने एक मनोहर स्वप्न देखा, जो 'अमृत से भरा कुंभ' था। रानी ने यह स्वप्न स्वामीनाथ से बताया। स्वामीनाथ ने प्रमोदित होते हुए कहा—हे प्रिये ! तू एक पुत्र रत्न को जन्म देगी।

रानी के कोख में एक जीव ने अपना माला (नीड) बनाना प्रारंभ किया। गर्भ को आठ माह और बीस दिन बीते।

व्यवहार और सामाजिक नीति थी कि स्त्री की प्रथम प्रसूति अपने पीहर में होनी चाहिए। इसी रिवाज के अनुसार विजयसेन ने कलावती को बुलाने हेतु अपना दूत भेजा। राजा ने कहा अभी इतनी दूर नहीं भेजा जा सकता। अतः दूत चला गया।

आज कलावती बहुत ही खुशियों से झूम उठी थी। आज अंग-अंग में आनन्द था, रोम रोम में रोमांच था, उसमें उमंग उछल रहा था। आज उसने नया सुन्दर रत्न जटित मूल्यवान कंकण परिधान किया था। सखियाँ देखकर बहुत खुश होती थी। रानी झरोखे में

बैठी सब सखियों के साथ आनंद प्रमोद मना रही थी। कलावती ने आनंद भरे स्वर में कहा—अहा! कितना मूल्यवान गहना है। भेजने वाले को मुझ पर कितना प्यार है, प्रेम है, स्नेह है। मेरे हाथों की शोभा उसी ने बढ़ायी, मैं तो मेरा जन्म सफल हो गया मानती हूँ। एक सखी ने कहा जैसी चन्द्रमा को कुमुदिनी पर प्रीति होती है, उसी प्रकार उसकी आप पर प्रीति है।

गवाक्ष के नीचे से जाने वाला राजा यह बात सुनकर अति क्रुद्ध हुआ। कलावती और सखियों का वार्तालाप राजा को अंगारे की वृष्टि समान लगा। अपनी जान पर धिक्कार और तिरस्कार बरसाने लगा। मैं भी वानर के समान मूर्ख बना। चिर्मी के समान चंचलनेत्रों वाली दंभमूर्ति महासती कहलाने वाली को मैं नहीं चाहता इसे तो मल के समान त्याग दूं, परित्याग कर दूं।

राजा गुप्त विचार करता चल पड़ा सूर्य भी कलावती पर आने वाले दुःख को देख नहीं सका इसलिए चला गया। पृथ्वी ने भी शोक प्रकट करने श्यामल वस्त्र धारण किया। आवेश मानव की विचार शक्ति को नष्ट कर देता है, और बाद में पश्चाताप की ज्वाला में ज्वलित होना पड़ता है। आवेश से अभिभूत होने से

कुछ पूछा नहीं सोचा नहीं और शीघ्र ही निर्णय ले लिया। अशुभ कार्यों में विलंब करना यही नीति का उल्लंघन कर राजा ने तुरन्त दो चांडालों को बुलाकर आज्ञा दी—जाओ कलावती को वन के अन्दर बहुत ही दूर छोड़ देना और दोनों बाहु सुवर्ण कंकण सहित काटकर मेरे सामने हाजिर करना।

चांडाल कलावती को लेकर भरे जंगल में गया, वहां छोड़ते समय दिल-देह में दुःख की नदियां बहने लगी। शोकाकुल बनकर बोला—क्या कहूं महारानीजी! मैं कुकर्मी हूँ, नीच हूं जिससे आज मुझे ऐसा कुकर्म कर्त्तव्य करना पड़ रहा है। अफसोस है! आपका क्या अपराध है यह भी नहीं कहा गया। आप सजग और सावधान रहें, क्योंकि आपके दोनों हाथ भी काट कर ले जाने पड़ेंगे ऐसी आज्ञा है महाराज की।

तत्वज्ञान को जीवन की धरातल पर जिसने उतारा है, कर्म शास्त्र को जानने वाली कलावती स्वस्थ सजग रहती हुई, चांडाल को उद्दिष्ट प्रसन्नता से और तत्वज्ञान की भाषा में जबाब देते हुए कहा—इसमें आपका कोई दोष नहीं है, मेरे पति का कोई दोष अपराध नहीं है। यह तो मैंने किये हुये पूर्व कर्म का फल है, जैसा कर्म किया है वैसा भुगतना पड़ता है।

जैसी हुंडी भरी हुई होती है वैसी निकलती है। इसी कर्मज्ञान के मेडिसन ने उसे दुःखी–दीन और आकुल नहीं बनने दिया। निर्दयी चांडाल ने तीक्ष्णछुरी से जैसे ककड़ी काटे उसी प्रकार उसके हाथ काट डाले। खून के फब्वारे उड़ने लगे। अहा हा रे कर्म ! रे नसीब ? एक सती स्त्री को, महारानी को भी ऐसी क्रूर सजा। पंखविहीन पक्षी, शाखाविहीन पादप की तरह कलावती दोहस्त रहित बनी। कर्म की अजीब कहानी है। कर्म की अनोखी अदा है। कर्म की क्रूर दृष्टि दुःखी–दुःखी बना देती है। कर्म की कृपा दृष्टि सुखी–सुखी कर देती है। कर्मों ने अपना हंटर मारना शुरु कर दिया था। रे कर्म ! क्षत के ऊपर क्षार डालने जैसे, गिर पड़ा ऊपर से पासा डालने जैसा, तुझे अभी भी दुःख कम दिखाई देते थे, जिससे प्रसूति की भयंकर वेदना उत्पन्न होने लगी। अरे रे। प्रसूति की वेदना कितनी भयंकर होती है, ऐसी वेदना राजरानी अकेली भोग रही है, न कोई सुनने वाला, न सहायता करने वाला, न आश्वासन देने वाला, कर्मों की गहनगति कैसी विचित्र है। विलक्षण है। रानी ने वेदना सहते-सहते पुत्र रत्न को जन्म दिया। सूर्य उदय से अन्धकार हट जाता है, उसीप्रकार

गुलाब पुष्प के समान गोरे पुत्रमुख को देखते ही विषाद वेदना चली गयी ।

चांडाल ने उदासीन चेहरे से रानी के काटकर लाए हुए दोनों हाथ राजा के समक्ष उपस्थित किए । सुवर्णकंकण से युक्त कटे हाथों का निरीक्षण करते करते कंकण पर जयसेन का नाम पढ़ा नाम पढ़ते ही कलावती के भाई का नाम जयसेन ओह ! व्याकुल बने राजा ने तुरंत दत्त को बुलाने भेजा । दत्त ने आते ही राजा का चेहरा देखकर कुछ ना कुछ अनुचित हुआ होगा ऐसा अनुमान लगाया ।

दत्त ! क्या कल कलावती के पीहर से कोई आया था ? राजा ने पूछा ।

हां जी ! देवशाल से कल राजसेवक आया था और उसके साथ भाई ने अपनी प्रिय भगिनी के लिए दो कंकण भेजे थे जो देवीजी को देकर चला गया ।

हैं ! हें ! सुनते ही राजा को वज्र का प्रहार होता हो ऐसी वेदना बढ़ते-बढ़ते अति हो गयी और राजा को मूर्छा आ गयी, सिंहासन से नीचे गिर गया ।

चंदनादि शीतोपचारों के महाप्रयास से राजा को चेतना आयी । सचेत बना राजा पश्चाताप की

अग्नि में जलने लगा। छाती कूटने लगा, सिर फोड़ने लगा और शोकग्रस्त शब्दों में बोला-अहो ! कैसी मेरी मूढ़ता ? कैसी मंद भाग्यता ? मैंने कैसी अविचारी मूर्ख जैसी प्रवृत्ति की ?

मंत्रियों के-दत्त के समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि, राजा ऐसा क्यों बोल रहा है ?

मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? मेरे जैसे पापी को तो पृथ्वी भी ग्रहण नहीं करेगी। कितना नीच कृत्य किया, असंभव को संभव माना, दूध में से पोरा, चन्द्रलेखा में कलंक, अमृत में जहर देखा। मेरी प्रिया महासती थी उस पर मैंने असती, कलंकिनी ऐसा दोषा-रोपण कर रात्रि के मध्य में जंगल में भेजा, उसके दोनों हाथ कटवाये।

मैं अब किसी को मुंह दिखाने लायक नहीं रहा, मेरी मूढ़ता पर लोग धिक्कार, तिरस्कार बरसा-येंगे। अब तो मैं चिता प्रवेश कर मृत्यु को आलिंगन करूंगा।

हे स्वामिन् ! एक तो कर्मवश बने रानीजी मृत्यु को पाये होंगे और आप भी आत्महत्या करने पर तुले हो, धैर्य धारण करें, विवेक के [illegible] को

समझें, आवेश और आग्रह का परित्याग कीजिये। मंत्रीवर्यों की समयानुकूल वाणी का अनादर कर राजा मरण के लिए तत्पर बना।

समयज्ञ गजश्रेष्ठी ने कालक्षेप करने के लिए मधुर वचनों में कहा—आपको जो करना हो वह करें, लेकिन इससे पूर्व विघ्न विनाशक, मंगलकारक जिनेश्वर देवकी पूजा कीजिये जिससे आपकी आपत्ति टल जायेगी।

राजा ने सोचा चलो यह एक मंगल कार्य करने के बाद चिता प्रवेश करेंगे।

राजा प्रभू की पूजा के लिए जिन मंदिर में गया। प्रभु की सुन्दर प्रकार से, उत्तम भावों से पूजा की, पूजा कर अमिततेज मुनि के वंदनार्थ गये। मुनि ने वैराग्यमय देशना आरंभ की।

संसार के स्वरूप का वर्णन किया-जीव कर्म के वश इधर-उधर वायु की तरह घूमता है। सुख मात्र भ्रांति है। पग पग पर दुःख की ज्वाला है। संसार से तिरने के लिए भवि जीव आलोक और परलोक को सुखदायी बनाने वाले जिनेश्वर देव की सेवा नहीं करते वह आंगन में उगे कल्पवृक्ष का उन्मूलन करते हैं। ऐसा

कोटि जन्म में दुर्लभ मानव जन्म पाकर ऐसी सुन्दर धर्माराधना करे कि जिससे मुक्ति सुख का उपभोक्ता बने। ऐसी मनोज्ञ मुग्ध मनोहर देशना सुन नृपति आनन्द विभोर बना वहीं रह गया। रात्रिवास भी वहीं व्यतीत किया।

प्रभात हुआ, आया सूर्य हँसता गाता, सोने जैसी धूप लुटाता। सरर सरर क्या हवा चली है, महक गयी हर कली कली है। राजा जागृत हुआ। गुरुदेव के समीप आकर निशाकाल में देखा स्वप्न बताया—कल्पवृक्ष से एक अपक्वफल युक्त शाखा भूमि पर पड़ी और पुनः पूर्ण फलयुक्त शाखा तुरन्त ही अपने स्थान पर चली गयी।

गुरुदेव ने स्वप्न फल बताते हुए कहा—कल्पवृक्ष याने राजा कल्पवृक्ष की शाखा याने तेरी प्रिया और पूर्ण फल याने तेरी प्रिया से पुत्र का प्रसव हुआ है। सुनते ही राजा आत्म विभोर बना नगर में गया। चन्द्र को देख सागर, मेघ को देख मयूर, इसीप्रकार राजा को देख प्रजा हर्षित बनी।

दत्त को बुलाकर राजा ने प्रिया को खोजने हेतु भेजा।

ग्राम-ग्राम, डगर-डगर, जंगल-जंगल भ्रमण करते हुए तापसवन में पहुंचा ।

पंखविहीन पक्षी की तरह, शाखाविहीन वृक्ष की तरह, हाथविहीन कलावती पुत्र को कैसे ले ? कैसे खिलाये ? कैसे पिलाये ? रे कर्म को कोई शर्म नहीं ।

पुत्र को संबोधित कर कहती है कि मैं कितनी मंद भाग्यशालिनी हूँ अभागिनी हूं ? राजरानी होते हुए पुत्र जन्मोत्सव नहीं मना सकी । एक भिलनी की तरह जंगल में जन्म दिया । राजमहल में जन्म होता तो कैसा महोत्सव मनाया जाता ? कैसी बधाईयां होती ? पेड़े आदि बांटे जाते । गरीबों को दान दिया जाता । सारी प्रजा खुशियों से झूम उठती । लेकिन आज तो यह शृगाल आदि पशुओं की ध्वनि से तेरा स्वागत हो रहा है । हवा के झोकों ने तेरा सन्मान किया । इसप्रकार हर्ष और विषाद खुशियाँ और शोक को धूप छांह में आंखमिचौनी मनोकुंज में खेल रही थी ।

अहा हा ! अभी भी कसौटी होनी थी, दुःख देना कर्मों का बाकी रहा था, इसलिए नदी में बहुत जोर की बाढ़ आयी । वृक्षों के टकराने से भयंकर आवाजें वातावरण में भीषणता, भयंकरता पैदा कर रही

थी । कलावती के पास भी नदी का पानी आने लगा ।

भयावह स्थिति में, दुखद परिस्थिति में धीर-वीर गंभीर बनी कलावती 'नमस्कार मंत्र' के स्मरण में रत बन गयी और अपनी सतीत्व धर्म की परीक्षा लेते हुए कहा—यदि मैंने पतिव्रता धर्म, सतीत्व धर्म और शील धर्म को तन-मन-वचन से शुद्ध पाला हो तो, नदी की बाढ़ अनुकूल हो और कटा हाथ फिर आ जाय ।

पारसमणि के स्पर्श से लोहा सोना बन जाय, चितामणी से कामित पूर्ण हो जाय, इसीप्रकार सतीत्व-पतिव्रता धर्म के प्रभाव से नदी की बाढ़ अनुकूल हो गयी, कटे हुए हाथ पुनः आ गये ।

हाथों से अपने बालक को खिलाने लगी जिससे आनंद विभोर बन गयी ।

एक तापस वहां पर आया और प्रसव वाली कलावती को देखकर सलाह दी कि, तुझ जैसी प्रसूति-वान को यहां रहना हितावह नहीं है । ऐसा समझकर कुलपति के पास तपोवन में ले गया । कुलपति ने वन-वास सम्बन्धी सभी बातें पूछी और धीर गंभीर स्वरों में कलावती ने पूरा वृत्तान्त सुनाया ।

कुलपति ने पूरा वृत्तान्त सुनकर कहा—हे भद्रे ! खेद न कर, लक्षणों से ज्ञात होता है कि, पुनः तेरे पुण्य का उदय है। आश्वस्त बनी कलावती आनंद-मग्न होकर तापसियों के साथ निवास करने लगी, अपना समय बिताने लगी।

एक दिन की बात है। दत्त ने तापस को कलावती विषयक प्रश्न पूछे। तापस ने कहा, कलावती से आपका क्या काम है ? आपका क्या संबंध है ?

दत्त ने शांत स्वर में अपनी बात कही कि, कलावती शंख नरेश्वर की प्रिया है। उसके वियोग में वह तड़प रहे हैं। वह नहीं मिलेगी तो मरण को प्राप्त करेंगे।

तापसी ने कहा—पुत्र के साथ एक स्त्री वन में वर्तमान है। सुनकर दत्त ने अनुमान लगाया कि वह अवश्य कलावती होगी ?

शीघ्र ही दत्त देखने चला दत्त को आता देख कर, लहरों से सागर याद आये, कारों से सफर याद आये। उसीप्रकार दत्त को देखकर कलावती का शोकानल पुनः प्रद्विप्त हुआ, रोने लगी। दत्त ने आश्वासन के शब्दों में कहा—बहन ! रुदन मत कर, यह तो कर्मों

का फल है। पूर्व भव में किया हुआ कर्म का फल तो जिनेश्वर जैसे अतिबली समर्थ को भी भुगतना पड़ता है, तो अपने तो क्या ? विवेकवती बहन कलावती ! रथ में आरूढ़ होकर शंखपुर चल । तेरे दर्शनरूप अमृत की वृष्टि से पति को जीवित रख । तेरे वियोग में पश्चाताप की अग्नि में जल रहे हैं। तेरे बिना अग्नि प्रवेश करने के लिये तत्पर बने हैं। हमने कालक्षेप कराया है। दत्त श्रेष्ठी ने संक्षेप में अपनी बात कही ।

वृत्तान्त सुनकर कुलीन कलावती ने जाने के लिए अनुज्ञा मांगी कुलपति ने 'शिवा अस्ते सन्तु पंथान' के आशीर्वचन के साथ अनुज्ञा दी ।

दत्त के साथ रथ में आरूढ़ होकर कलावती नगर के बाहर आयी। राजा को यह समाचार ज्ञात होते ही बड़ी धूमधाम से हर्षोल्लास के साथ कलावती का नगर प्रवेश कराया ।

हे देवी ! तू निर्दोष होते हुए भी मैंने तुझको बहुत ही दुःख दिया, विडंबना की, वन में भेजो, मेरे इस अपराध की क्षमा चाहता हूं ।

कलावती के साथ राजा शंख सुख भोगने लगा । अपने पुत्र का जन्मोत्सव मनाया और स्वप्न के अनुसार

'पुष्पकलश' (पियूष कलश) नामाभियान किया।

अवसर देख रानी ने पूछा—स्वामिन् ! मेरा ऐसा क्या दोष था ? जिससे मुझे प्रगाढ़ जंगल में भेज दिया, इतना ही नहीं दोनों हाथ कटवाये !

देवी ! नये कंकण आभूषण से भूषित होकर अपनी सहेलियों के साथ हंसी-मजाक कर रही थी। सखियों ने पूछा ये कंकण किसने भेजे ? तूने कहा मेरे प्रिय ने प्रेमपात्र ने भेजे हैं। यह बात सुनकर वहमी संशयी बने मन के आवेश से क्रुद्ध होकर यह कार्य किया। राजा ने स्पष्ट बात बताकर कहा—ऐसा दुःख तुझे क्यों भुगतना पड़ा यह तो ज्ञानियों के सिवा कोई नहीं बता सकेगा।

देवी ! वन में आये हुये अमिततेज मुनिवर से इस बात का खुलासा करेंगे।

दोनों अमिततेज मुनिश्वर के समक्ष उपस्थित हुए। मुनि ने निर्वाण मार्ग और कर्म मुक्त कारिणी देशना सुनायी।

देशना के बाद नृपति ने पूछा—मुनीश्वर कलावती ने पूर्व भव में ऐसा कौनसा कर्म किया था ?

जिसकी वजह से निर्दोष होने पर भी मैंने दोनों हाथ कटवाये ?

महाज्ञानी मुनि प्रवर ने गंगा की प्रवाह समान वाणी में कहा—महा विदेह क्षेत्र में महेन्द्रपुर नामक नगर था। नर विक्रम राजा का राज्य था। राजा को सुलोचना नामक एक पुत्री थी। राजा-रानी उसे बहुत प्यार दुलार करते थे। लाडली थी, प्रेमपात्र भी।

अपने अंक में पुत्री को लेकर राजा बैठा था। उसी समय किसी ने आकर राजा को तोता भेंट किया। राजा ने कौतुक से तोते को बुलाया, तो तोते ने मधुर शब्दों में आशीर्वचन दिया–हे राजेश्वर विश्व में प्रकाश करने वाला तेरा प्रताप रूपी सूर्य शत्रु रूप अंधकार को नाश करते हुए राजतेज को वृद्धि करने वाला हो !

राजा यह बात सुनकर बहुत ही हर्षित हुआ, और बहुत ही धन दान में दिया गया।

हरा रंग, लाल चांद, मधुर स्वर ऐसा सुहाना तोता पुत्री ने ले लिया और सोने के पिंजरे में रख दिया। प्रतिदिन शक्कर, चावल, अनार के दाने खिलाती हुई, उसे अपने हाथ पर, खंभे पर, हृदय पर बैठाकर आनंद पाने लगी।

योगी पुरुष जिसप्रकार मन की एकाग्रता तजते नहीं हैं, उसीप्रकार सुलोचना कभी भी उसे अलग नहीं रखती। राजसभा में, भोजन समय में, शयनकक्ष में हमेशा साथ लेकर जाती थी।

एक दिन की बात है अपनी सखियों के साथ सुलोचना अपना प्यारा तोता लेकर श्री सीमंधर परमात्मा के दर्शन हेतु मन्दिर में गयी।

प्रभु को प्रतिमा तोते ने देखी और मन में चिंतन करने लगा। ऐसी मुखमुद्रा वाली प्रतिमा मैंने कहाँ पर देखी है? चिंतन के सागर में जैसे ही गोते खाने लगा, उसे 'जातिस्मरण' याने पूर्वजन्म का ज्ञान हो गया।

हा! हा! मुझे पूर्व जन्म में सुगतिदायक चरित्र्य रत्न तो प्राप्त हुआ, उसी चरित्र में क्षयोपशम से ज्ञानार्जन तो बहुत ही किया लेकिन सम्यक् क्रिया में प्रमाद करता था। वस्त्र-पात्र-पुस्तक आदि पर तो मूर्च्छा करता था। फलतः चरित्र रत्न को खो दिया। विराधना की आलोचना नहीं ली और ऐसे ही मरण के शरण में पहुंचा।

अहाहा ! स्वर्ग में नहीं गया, मानव नहीं बना लेकिन तिर्यंच योनि में राजशुक बना, पंडित का तोता बना ।

ज्ञानदीपक हाथों में होते हुए दुर्गति के कुए में पड़ा । पश्चाताप के पावक में जलता हुआ तोता, इस भव को सफल सार्थक कैसे बनाऊं ? ऐसा सोचते-सोचते तोते ने अभिग्रह धारण किया, अब से प्रभु दर्शन के बिना अन्नग्रहण नहीं करूंगा ।

सुलोचना तोते को लेकर खाने बैठी । तोते को अपना नियम याद आया और 'नमो अरिहंताणं' कहके उड़कर श्री सोमंधर परमात्मा के दर्शन करने गया । दर्शन करने के बाद पुष्प उद्यान में प्रीति होने से वहीं फलाहार कर यत्र-तत्र भ्रमण करने लगा ।

राजकुमारी अपने प्यारे तोते के वियोग में तड़फने लगी, तरसने लगी । शोकाकुल बनी रोने लगी, सिर पीटने लगी । राजसेवक गरुड़ की तरह तोते को पकड़ने दौड़ पड़े ।

धीरे-धीरे शाखा स्थित तोते को पास में बंद कर दिया और राजकुमारी के पास लाया गया ।

राजपुत्री ने प्रेम से हाथ फेरते हुए प्यार से कहा—माता के समान मेरा परित्याग करके चला गया, अब तो तेरा विश्वास नहीं करूंगी, कैसे भागेगा यह मैं भी देखूंगी, तेरे पास पंख हैं सो उड़ जाता है, पंखविहीन बना दूंगी तो कैसे उड़ेगा ? "न रहे बांस तो न बजे बांसुरी ।"

ऐसा सोचकर तीक्ष्ण छुरी से उसको दोनों पंख से अलग कर दिया । अपना मजा–दूसरों को सजा, अपना आनंद–दूसरों का आक्रान्द, अपनी दीवाली-दूसरों की होली, प्रेम का यही पुरस्कार ।

पूर्व जन्म ज्ञानी तोता अपने आपको समता में समाधि में रखने के लिए सोचता है । हे आत्मन् ! तुझे तो धिक्कार है, तिरस्कार है, तूने स्वाधीन अवस्था में क्रिया नहीं की अब पराधीन अवस्था में कैसी वेदना विषाद का अनुभव करना पड़ता है । लेकिन खेद न कर द्वेष मत कर, स्वस्थता बहुत ही दुर्लभ है ऐसी भावना में मस्त बना मग्न बना, आंखों में से आंसू बहाता, कितनेक दिनों का अनशन कर सौधर्म देवलोक में देव बना । तोते के मरण से दुःखी बनी सुलोचना ने अनशन किया और वह मर कर तेरी प्रिया के रूप में देवी बनी ।

वहां दोनों स्वर्ग के सुख भोगते भोगते वहां से च्यवकर (मरण के बाद) तोते का जीव तू शंख बना और सुलोचना का जीव कलावती तेरी प्रिया बनी।

कलावती बनी सुलोचना ने तोते के भव में तेरे पंख काटे थे इसलिये वर्तमान जीवन में शंखराजा तूने उसके हाथ कटवाये। कर्मों का हिसाब चुकाना पड़ता है। सर्व जीव कर्मवश बनकर ही शुभअशुभ कार्य करते हैं, अतः कर्म के बंधन के समय सोचें। 'बंध समय जीव चेतिये उदये सो संताप।"

हंसते-हंसते बांधे हुये कर्म रोने से नहीं छूटेंगे। कर्म का फल कम से कम दस–भव से ज्यादा भोगना पड़ता है।

गुरुदेव ने इसप्रकार शंख—कलावती का पूर्व भव सुनाया—सुनते सुनते दोनों को पूर्व भव का याने जातिस्मरण का ज्ञान हुआ।

संसार की विचित्रता, कर्मों की क्रूरता आदि को जानकर दीक्षा की अभिलाषा हुई।

पुष्पकलश को राज्यगद्दी समारोह से अर्पण कर दीक्षा ग्रहण की।

चिरकाल चारित्र पालनकर दंपत्ति स्वर्ग में गये। वहां से मनुष्य बनकर संयम ग्रहण कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में जायेंगे।

अहंकार की पराजय

एक बार इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया अपने पति प्रिन्स आलबर्ट के कमरे के पास जाकर दरवाजा खटखटाने लगी प्रिन्स आलबर्ट ने भीतर से पूछा। "कौन है? विक्टोरिया ने उत्तर दिया। "रानी विक्टोरिया" लेकिन कमरे का दरवाजा नहीं खुला! कुछ देर बाद विक्टोरिया ने फिर दरवाजा खटखटाया।

फिर वही प्रश्न भीतर से पूछा गया। कौन है? इस बार रानी विक्टोरिया ने कोमल स्वर से उत्तर दिया—'आपकी विक्टोरिया।"

प्रिन्स आलबर्ट ने तुरन्त दरवाजा खोल दिया।

पुष्प-चूला

गंगा नदी के तीर पर पुष्पभद्रा नामक नगरी थी वहां पुष्पकेतु नामक राजा राज्य करता था। उसके पुष्पावती नामक रानी थी। रानी ने एक युगल को जन्म दिया। एक पुत्र था, एक पुत्री थी। अनुक्रम से दोनों का नाम पुष्पचूल और पुष्पचूला रखा। दोनों साथ में खेलते थे, साथ में खाते थे, साथ में पीते थे। दोनों बालकों का अजोड़ स्नेह (प्यार) देखकर राजा ने सोचा अलग होंगे तो वियोग के दुःख से मर जायेंगे, मुझे भी वियोग होगा इससे अच्छा दोनों का परस्पर लग्न कर दूं। ऐसा सोचकर एक बार राज्य सभा में मंत्रियों को कहा—अन्तःपुर में जो रत्न पैदा होता है उनका स्वामी कौन ? सभी ने कहा—आप राजेश्वर ही स्वामी होते हैं, सुनकर राजा ने पुष्पचूल तथा पुष्पचूला का लग्न कर दिया। भाई बहन (पुत्र-पुत्री) का लग्न देखकर इस दुष्कृत्य से रानी अति व्यथित बनी। वैरागिनी बनी, संयम स्वीकारा, तीव्र तपस्या कर रानी

मृत्यु पाकर देवरूप में उत्पन्न हुई। पुष्पकेतु राजा भी मृत्यु पा गया। पुष्पचूल राजा बना।

माता पुष्पावती देव बनी यह स्व पुत्र-पुत्री का अघटित लग्न को अवधिज्ञान से जानकर उसके निवारण हेतु पुष्पचूला को नारकी के विविध दृश्य, विविध वेदना युक्त घटना दिखाने लगो। देखकर जागृत हुई, भयभीत बनी तथा अपने पति के पास आयी और सभी बात कही राजा भी भयभीत बना सर्व शांति-निमित्त बलि कर्म किया लेकिन शांति नहीं हुई, लेकिन नारकी के विविध स्वरूप दिखने लगे।

राजा सभी आचार्यों को बुलाकर सभी को नारकी का स्वरूप पूछने लगा—किसी ने गर्भवास समान कहा, किसी ने अति दारिद्रय समान कहा, किसी ने परतंत्र रूप कहा परन्तु सर्व बात वास्तविक नहीं लगी। तभी अर्न्निका पुत्र आचार्य को बुलाया और नारकी के बारे में पूछा। नारकी की स्थिति बताते हुए कहा—नारकी सात हैं। प्रथम नारकी में जघन्य स्थिति दस हजार साल की, उत्कृष्ट एक सागरोपम की, द्वितीय की जघन्य एक सागरोपम की, उत्कृष्ट तीन सागरोपम की, तृतीय नारकी की जघन्य तीन सागरोपम की, उत्कृष्ट सात सागरोपम की। चतुर्थ की जघन्य सात सागरोपम

और उत्कृष्ट दश सागरोपम की। पंचम की जघन्य दश सागरोपम की, उत्कृष्ट सत्तरह सागरोपम की। छठी नारकी की जघन्य सत्तरह सागरोपमकी और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की। सातवीं नारकी की जघन्य बाईस साग-रोपम की और उत्कृष्ट तैतीस सागरोपम की स्थिति है। सात नारकी में क्षेत्र कृत वेदना, प्रहरण वेदना शारी-रिक वेदना, अन्योन्य कृत वेदना, पांच नारकी में पर्यन्त प्रहरण कृत वेदना है। तीन तक परमाधामी कृत वेदना भी है, प्रथम की तीन नारकी में चार प्रकार की, चौथी पांचवीं में तीन प्रकार की छठी और सातवीं में दो प्रकार की वेदना है।

गुरु के इसप्रकार के वचन सुनकर आश्चर्य चकित बना पूछा—प्रभो ! आपको कैसा ज्ञान ? सर्वज्ञ प्रभु के आगम ज्ञान से नरकादि स्वरूप ज्ञात होता है। पुष्पचूला ने पूछा—

हे भगवन् ! नरकगति में कौन जाता है? महा आरंभी, महा परिग्रही, गुरुजनों के निंदक, पंचेन्द्रिय जीव के घाती, मांस भक्षी जीव नरक में जाता है।

अन्य पाखंडियों ने कहा है उत्तम पकवान, श्रेष्ठ पटकुल, अनुकूल वाहन यह स्वर्ग है। यह बात यथार्थ है क्या ?

आचार्य भगवान ने कहा—नहीं, स्वर्ग तो गति है, जो सम्यक्प्रकार से सम्यक्त्व मूल बारह व्रत का पालन याने गृहस्थ धर्म पांच महाव्रत स्वरूप यति धर्म के सेवन से जीव बारह देवलोक में जाता है। सिद्धान्त में कहा है—

प्रथम सौधर्म देवलोक में बत्तीस लाख विमान हैं, द्वितीय ईशान देवलोक में अट्ठाईश लाख विमान हैं, तृतीय सनत्कुमार देवलोक में बारह लाख विमान हैं, और चतुर्थ माहेन्द्र देवलोक में आठ लाख विमान हैं, पंचम ब्रह्मदेव देवलोक में चार लाख विमान हैं, छठे लांतक देव लोक में पचास हजार विमान हैं, सातवें महाशुक्ल देवलोक में चालीस हजार विमान हैं, आठवें सहस्रार देवलोक में छह हजार विमान हैं, नौवें आनत और दशवें प्राणत देवलोक में चार सौ विमान हैं, ग्यारहवें और बारहवें आरण-अच्युत देवलोक में तीन सौ विमान हैं। श्रेष्ठ मुकुट-आभूषण आदि से अलंकृत ऐरावत आदि सवारों के धारक हैं। इसीप्रकार इन्द्र की ऋद्धि है।

रानी ने प्रतिबोध पाकर राजा से दीक्षा की अनुमति मांगी तो राजा ने कहा—तेरा वियोग मैं क्षण

मात्र सहन करने में असमर्थ हूँ इसीलिए दीक्षा लेकर घर में रह, शुद्ध आहार ग्रहण कर, पति का वचन अंगीकार कर, दीक्षा के पश्चात् पतिगृह में रहती हुई शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन तथा बियालीस दोष रहित आहार गवेषणा कर लाने लगी।

अग्निका पुत्र ने शास्त्र ज्ञान से जान लिया था कि भयंकर दुष्काल पड़ेगा लेकिन अशक्ति के कारण अन्य देश में जा सके नहीं। पुष्पचूला गुरुदेव को शुद्ध आहार-पानी लाकर देती थी। उत्तम सेवाधर्म की आराधना से क्षपक श्रेणी में चढ़ाने से महासती को केवलज्ञान हुआ लेकिन गुरु की वैयावृत्त्य त्यागी नहीं। एक बार वर्षा हो रही थी तो भी गुरु को आहारपानी ग्रहण कर लायी।

गुरु ने पूछा—हे श्रुतज्ञानी वत्से ! वर्षा में भी तू गोचरी कैसे लायी ?

गुरुदेव ! जहाँ-जहाँ अचित अपकाय था वहाँ-वहाँ से गोचरी लेकर आयी हूँ।

अचित प्रदेश आपकी कृपा से प्राप्त ज्ञान से जाना।

गुरु ने पूछा ज्ञान प्रतिपाती है या अप्रतिपाती है। अप्रतिपाति केवलज्ञान हुआ है साध्वी ने कहा।

तुरन्त गुरु ने खड़े होकर साध्वीजी महाराज को मिच्छामि दुक्कडं दिया और आशातना की इसीप्रकार निंदा की।

साध्वीजी महाराज को पूछा—मैं मोक्ष में जाऊँगा या नहीं?

गुरुदेव! आपश्री को गंगानदी को पार करते केवलज्ञान होगा।

आत्मा की भूल

यह क्या मजाक नहीं है कि अनन्तशक्तिपुंज आत्मा हर किसी के सामने हाथ फैला रही है, भीख मांग रही है। स्वयं को दीन-हीन समझ रही है, और दूसरे देवी-देवताओं को अपने से महान् मान बैठी है।

यह स्थिति क्यों हो रही है?

उत्तर एक ही है, वह अपने स्वरूप को भूल रही है। अपनी शक्ति और अस्तित्व का बोध उसे नहीं हो पा रहा है, इसलिए वह कदम-कदम पर झोली फैलाए गिड़गिड़ा रही है।

यक्षा यक्ष दिन्ना,

भूता-भूत दिन्ना,

सेणा-वेणा-रेणा ।

पाटली पुत्र नगर था । नंदराजा के समय में कल्पकवंश के शकटाल नामक मंत्री के सात पुत्रियां थीं । यक्षा-यक्ष दिन्ना-भूता-भूत दिन्ना सेणा-वेणा-रेणा अनुक्रम से नाम था । माता का नाम लक्ष्मीवती थी । स्थूल भद्र तथा श्रीयक उनके दो भाई थे ।

स्थूलभद्रजी के दीक्षा लेने से श्रीयक ने मंत्रीपद ग्रहण किया था । एक दिन विहार करते-करते संभूति-विजय आचार्य पधारे उनके धर्मोपदेश द्वारा श्रीयक ने तथा उनके साथ सात बहनों ने दीक्षा ग्रहण की ।

पर्यूषण पर्व आया । अंतिम में संवत्सरी का दिन आया तभी श्रीयक को उनकी बहन कहने लगी भाई आज वार्षिक दिन है । आज तो प्रत्याख्यान करो कहा

है कि आज महान् पर्व के दिन दान, पुण्य, तप करने से अनंत गुणा-लाभ प्राप्त होता है जो प्राणी एकाग्र चित्त से जिनशासन की पूजा प्रभावना में तत्पर रहे। इक्कीस बार-कल्पसूत्र श्रवण करे वह शीघ्र भव सागर पार कर लेता है। भगिनी का वचन सुनकर श्रीयक ने पोरुषी की। तत्पश्चात् साढ़ पोरुषी की। बाद में पुरीमड्ढ़ किया। वीर्योल्लास बढ़ता गया अवड्ढ़ कर दिया अनुक्रम से उपवास का प्रत्याख्यान किया। पूरा दिन महोत्सव में गया परन्तु रात्रि महा दुःखदायी हो गयी। इतना मुश्किल हो गया कि पंच परमेष्ठी नमस्कार मंत्र के ध्यान में मस्त बना श्रीयक मृत्यु पाकर देवलोक में गया।

भाई श्रीयक मृत्यु पा गया सुनकर यक्षा अति दुःखी बन गयी। श्रीसंघ के आगे स्वयं के आग्रह के कारण श्रीयक प्रत्याख्यान में आगे बढ़ता-बढ़ता मृत्यु पा गया। इसी कारण साधु-घात का महान् पातक लगा ऐसा कहकर अपघात करने को तैयार हुयी। श्रीसंघ ने कहा—आपने हित वृद्धि से उपवास कराया इसलिये आपको दोष नहीं लगता। आपने तो महान् पुण्य का कार्य किया है और आपके भाई तो स्वर्ग में गये हैं।

यक्षा ने कहा—श्री जिनेश्वर भगवान् स्वयं यह बात कहें तो मैं सत्य मानूंगी।

श्रीसंघ ने कायोत्सर्ग किया। शासन देवी ने यक्षा को साथ में उठाकर श्री सोमंधर स्वामी के पास जाकर रख दी। नमस्कार कहकर अपना संदेह दूर करने के लिए पूछा—श्रीयक बहुकर्मों का अक्षयकर प्रथम देव-लोक में गया है। वहां से मनुष्य होकर मुक्ति पायेगा। नि:संदेह बनी यक्षा को तत्पश्चात् उपदेश सुनाया। चार चूलिका दी वह स्वयं ने बराबर व्यवस्थित धारण कर दी। जिनप्रभू को वंदन करने के बाद शासन देवी लेकर वापस आयी। चार चूलिका श्रीसंघ को दे दी।

एक दिन सात भगिनि स्थूल भद्रजी को वंदन करने हेतु गयी। आचार्य श्री संभूतिविजय को वंदन कर पूछने लगी—भाई महाराज कहां विराजमान है वंदन करने जाना है। संभूति विजयजी ने कहा—आगे अशोक वृक्ष है, वहां एकान्त में स्वाध्याय करता होगा। सातों भगिनि वंदन करने गयी। जाकर वहां सिह को देखा स्थूलभद्रजी को नहीं देखा। भय पाकर वापस आयी और गुरुदेव से कहने लगीं—सिंह हमारे भाई का भक्षण कर गया लगता है। गुरु ने कहा—खेद न कर तुम्हारा

भाई तो वहीं विद्यमान है। आचार्य महाराज के कहने से गयो तो स्थूलभद्रजी को देखा। पूछने पर कहा—मैंने सिंह का रूप धारण किया था। यह बात आचार्य देव को खबर पड़ी।

इत्यादि अकलंक ऐसे शीयल से युक्त महासतियां जयवंती वर्तती हैं। जो महासतियों का यश पटह सकल त्रिभुवन आज पर्यन्त बज रहा है।

और सुधार का उपाय

अमेरिका के प्रसिद्ध उद्योगपति कारनेगी से किसी ने पूछा "आपकी सफलता का रहस्य क्या है ? कारनेगी ने उत्तर दिया—सही समय पर सही निर्णय करना।"

"और सही निर्णय कैसे कर सकते हैं....?"

अनुभवों के आधार पर....।

"और अनुभव कैसे प्राप्त किए....?"

"गलत निर्णयों के आधार पर।"

जीवन में जो गलती एक बार हुई, वह दुबारा न हो—'वीयं तं न समायरे'—गलती को दुहराएँ नहीं—यही गलती को सुधारने का उपाय है।

प्रतिज्ञा की आवश्यकता किसलिये ?

प्रबल पुण्यके प्रभावसे मानव-जन्मकी प्राप्ति होती है। ऐसे मानव-जीवनको सफल बनाने हेतु उसे नियमबद्ध, ध्येयसिद्ध और संस्कारयुक्त बनाना जरूरी है। इसलिए जीवन में प्रतिज्ञापूर्वक व्रतनियम की आवश्यकता है। कार कितनी ही सुन्दर, वेगवान क्यों न हो, फिर भी उसमें 'ब्रेक' न हो तो उसकी कोई कीमत नहीं। ऐसी कार कब सत्यानाश का कारण हो जायेगी उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ठीक इसी तरह मानव जीवन की सुन्दर 'इम्पाला-कार' को भी व्रतनियमरूपी ब्रेक से वंचित रखी जाय तो वह हमें कब दुःख और दुर्गति की खाईमें धकेल देगी उसका कोई भरोसा नहीं।

बहुतांश लोगों की ऐसी दलील होती है कि 'हम प्रतिज्ञा न लेते हुए भी ऐसे ही पालन करें तो क्या दोष लगता है ?' इसके बारे में श्री जिनशासन कहता है आप शायद जानते नहीं कि, पाप न करते हुए भी प्रतिज्ञा न लेनेसे पाप चालू ही रहता है। जैसे कि लाइसेंस रद्द न कराने से कुछभी उपयोग में नहीं लिया हुआ, कचरे में गिरा हुआ, रेडियो का भी वार्षिक पन्द्रह रुपये भरने

ही पड़ते हैं न ? जैसे कि झाड़ाचिट्ठी रद्द न कराने से बंद पड़े हुए एवं जिसका कुछ भी उपयोग आप नहीं करते हैं ऐसे मकान का भी किराया भरना ही पड़ता है न ? ठीक उसी तरह पाप न करने से भी पाप न करने की प्रतिज्ञा नहीं लेने से हर पल पाप करने की संभावना (Possibility) खड़ी रहती है और यह संभावना यही पाप है । अतः आप आलू, प्याज वगैरह न खाते हुए भी प्रतिज्ञा नहीं लेंगे तब तक पाप लगता ही है । कारण कि किसी भी पल आलू खाने का 'चान्स' खुला रहता है न ? साक्षात् तीर्थंकर महावीर प्रभु जैसे भी आजीवन सामायिक की दोनों हाथ जोड़कर प्रतिज्ञा लेते हैं, तो आप छोटी सी भी प्रतिज्ञा लेने में क्यों हिचकिचाते हैं ।

याद रखिये, प्रतिज्ञा यह बंधन नहीं बल्कि पापों से मुक्ति है । प्रतिज्ञाविहीन, स्वच्छंद जीवन आपकी पशुचेतनाको जागृत करता है और प्रतिज्ञाबद्ध, संस्कारी जीवन हमारे अंतर में रहती हुई आत्मचेतना को जागृत करता है और हमें आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर करता है ।

अवश्य मंगवाइये ! घर की शोभा बढाईये !!

सन्तानों में संस्कार और सदाचार की सौरभ प्रसारित करें।

आशीर्वाददाता-प० पू० कर्नाटककेसरी आचार्यदेव श्री भद्रंकर-सूरीश्वरजी म० तथा पू० उपाध्याय पुण्यविजयजी गणिवर

卐 महासतियों के चरित्र की प्राथमिक श्रेणी प्रकाशित 卐

भाग सं०		मूल्य
1-	महासती सुलसा	1.00
2-	महासती चन्दनबाला तथा मनोरमा	1.00
3-	महासती नर्मदासुन्दरी तथा सीता	1.50
4-	महासती सुभद्रा तथा राजमती	1.50
5-	महासती ऋषीदत्ता	2.00
6-	महासती अंजना आदि पांच महासती	2.00
7-	ब्राह्मी आदि आठ महासती	2.00
8-	धारिणी आदि 17 महासती	2.00

नोट (i) पूर्ण श्रेणी का मूल्य 11 रुपये।

(ii) मनीआर्डर द्वारा निम्न पते से पुस्तकें प्राप्त होंगी।

श्री कपूरचन्द जी जैन

अस्पताल के पास, भायलापुरा

हिण्डौन सिटी–322230

सवाईमाधोपुर (राजस्थान)